REVIEW OF RESEARCH
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF) UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514 ISSN: 2249-894X
VOLUME - 8 | ISSUE - 6 | MARCH - 2019

हिंदी कहानी में दलित का संघर्ष

डॉ. राजेन्द्र खैरनार
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, कला, विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय,
विद्यानगरी, बारामती, जि. पुणे (महाराष्ट्र),

दलितों का संघर्ष

भारतीय समाज में दलित सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और धार्मिक स्तर पर निरंतर संघर्ष करता आया है। संघर्ष के बिना उसे कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ है। एक दीर्घ लड़ाई लड़ी है उसने। बुद्ध, कबीर से लेकर डॉ. आंबेडकर तक, सबको संघर्ष करना पड़ा है। आधुनिक युग में, जहाँ हम इसक्कीसवीं सदी की बात करते हैं, विश्वग्राम की ओर बढ़ रहे हैं, महासत्ता बनने का सपना देख रहे हैं, वहाँ भी दलितों के संघर्षों में कोई अंतर नहीं आया है। जातिव्यवस्था ने अपना रूप बदला है, अतः दलितों का संघर्ष भी बदल रहा है। कई बार बीमारी इसलिए नहीं जाती क्योंकि उसके विषाणुओं पर पुरानी दवा का कोई परिणाम नहीं होता। अतः नई दवाओं की आवश्यकता पड़ती है। उसी प्रकार जातिवाद के खिलाफ संघर्ष के हथियार भी बदलने पड़ रहे हैं। अब वह शारीरिक कम, मानसिक और बौद्धिक संघर्ष अधिक है।

सामाजिक संघर्ष

दलित कहानी में प्रमुख रूप से सामाजिक संघर्ष चित्रित हुआ है। सामाजिक विषमता के कारण ही अब तक दलित उपेक्षा, अपमान और अत्याचार सहता आया है। इसलिए सामाजिक अत्याचारों का स्वरूप, दलितों का उसके खिलाफ विद्रोह आदि दलित कहानी में प्रमुखता से चित्रित होना स्वाभाविक है। मोहनदास नैमिशराय, ओमप्रकाश वाल्मीकि आदि सभी दलित लेखकों की कहानी में यह बात देखने को मिलती है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'मुंबई कांड' का नायक सुमेर इन्हीं सामाजिक अत्याचारों के खिलाफ विद्रोह करता है। मुंबई में डॉ. आंबेडकर की मूर्ति को अपमानित किया गया था। विरोध में उतरें दलितों पर पुलिस की गोलियाँ बरसीं थीं- बेरहमी से। कईं दलित मारे गए। यह सब जब से टी. व्ही. चैनलों पर सुमेर ने देखा है तब से वह बेचैन है। इस घटना का विरोध वह करना चाहता है। बहुत सोच-विचार के बाद वह अपने शहर में लगी गांधी की मूर्ति को जूतों का हार पहनाएगा- चुपचाप। परंतु जब सुमेर रात में अकेला गांधी की प्रतिमा के सामने जूतों की माला लेकर खड़ा हुआ तो ठिठक गया, 'अरे ! मैं यह क्या कर रहा हूँ। मुंबई में किसी ने मेरे विश्वास पर चोट की और मैं यहाँ किसी की आस्था पर चोट करने जा रहा हूँ। कुछ गांधी को बापू कहते हैं और कुछ अंबेडकर को बाबा। वहाँ बाबा कहनेवाले मारे गए, यहाँ बापू कहनेवाले मारे जा सकते हैं। बाबा कहनेवालों पर भी गाज गिर सकती है। जो भी हो मारे तो निर्दोष ही जाएँगे।'[1] अर्थात यहाँ नायक की वैचारिक प्रतिबद्धता उसे गलत काम करने से रोकती है।

यहाँ एक महत्वपूर्ण बात अधोरेखित होती है और वह है दलित साहित्यकार की वैचारिक प्रतिबद्धता। नायक डॉ. आंबेडकर के विचारों में आस्था रखता है। अतः वह यह सोचता है कि विरोध का जो मार्ग मैं चुन रहा हूँ वह न तो आंबेडकर का मार्ग है और न बुद्ध का। एक गुनाह का बदला दूसरे गुनाह से नहीं लिया जा सकता। इससे घृणा ही बढ़ेगी। आवश्यकता है परस्पर प्रेम और विश्वास बढ़ाने की। सुमेर घृणा का मार्ग छोड़कर प्रेम और विश्वास का मार्ग अपनाता है।

दलित साहित्यकार सामाजिक परिवर्तन पर जोर देता है। हिंदू धर्म में सामाजिक विषमता का मूल जाति-व्यवस्था में है। सवर्ण जातियाँ अपने आप को उच्च जातियाँ मानकर शूद्र-अतिशूद्रों पर अन्याय-अत्याचार करते आए हैं। सवर्ण समाज दलितों को न पीने का पानी देते थे, न अपने साथ उठने- बैठने देते थे। प्रेमचंद जी की 'ठाकुर का कुआ' कहानी में दलितों की यही पीड़ा चित्रित है।

दलित कहानीकारों की कहानियों में भी इस भेदभाव को चित्रित किया गया है। पर मात्र यही नहीं, दलित साहित्यकार इससे भी आगे जाकर दलितों के आपसी भेदभावों को भी अपनी कहानियों से उद्घाटित किया है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'शवयात्रा'[2] इस संदर्भ में सुंदर उदाहरण है। इस कहानी के बल्हार दलितों में भी दलित हैं। सवर्ण समाज जिस प्रकार का अत्याचार जातिगत भेदभाव के कारण चमारों पर करते हैं, उसी प्रकार का और उसी कारण से चमार बल्हारों पर अत्याचार करते हैं। सवर्णों के अत्याचारों का निषेध होता है, तो चमारों के व्यवहारों का क्यों नहीं ? जब कोई दलित सामाजिक समता की माँग करता है तो उसे बल्हार, डोम, मेहतर आदि निम्न जातियों को भी याद रखना होगा। सामाजिक समता केवल चमार या महारों को सम्मान देने से नहीं आएगी। इस व्यवस्था के आखरी छोर पर खड़े बल्हार, डोम, मेहतर आदि सभी को साथ लेने से ही आएगी। यह सामाजिक वास्तव इक्कीसवीं सदी की हिंदी दलित कहानी से अभिव्यक्त हो रहा है।

'नया ब्राह्मण' कहानी संग्रह की लगभग सभी कहानियों में दलित समाज का चित्रण है। इसलिए इन कहानियों में अस्पृश्यता का दर्द चित्रित है। आजादी के साठ वर्षों के बाद भी गाँवों-शहरों में छुआछूत देखने को मिलती है। इंसान होकर भी उच्च वर्णियों द्वारा दलित होने के कारण जो अपमान मिलता है, शोषण होता है वह भयानक है। गाँवों की बात जाने दीजिए, शहरों में और वह भी सरकारी कार्यालयों में अस्पृश्यता का भयानक रूप आज भी मौजूद है। आज भी उच्च वर्णिय समाज की मानसिकता नहीं बदली है। इसलिए भारतीय समाज की जाति-व्यवस्था जो सरकारी कागज पर खत्म हो गई है, मानसिक स्तर पर आज भी बरकरार है। 'दो रंग' कहानी का ब्राह्मण चपरासी गंगासन तबादले की अर्जी इसलिए देता है कि वह किसी दलित अधिकारी के अधीन काम नहीं करना चाहता। इस देश में जाति कहाँ तक पहुँच गई है। हम मनुष्य को मनुष्य के रूप में नहीं पहचानते, उसे हम धर्म, प्रांत, भाषा, जाति के आधार पर पहचानते हैं। और आज हमारे नेता एक महासत्ता बनने का सपना देख रहे हैं। महासत्ता बनने का सपना देखना बुरी बात नहीं है, पर आर्थिक-सामाजिक विषमता के यथार्थ से मुँह मोड़ कर महासत्ता बनने का सपना देखना बुरी बात है।

'जाति' कहानी में भी इसी प्रकार उच्चवर्णिय कर्मचारियों की मानसिकता व्यक्त हुई है। इस कहानी का एक पात्र पी.सी. शर्मा अपने दलित अधिकारी को उसकी जाति को लेकर हमेशा अपमानित करता रहता है। यह दलित अधिकारी संयम रख कर परिस्थिति का सामना करता है। अन्यथा ऐसे कार्यालय में काम करना मुश्किल हो जाता है। संविधान ने दलितों को देश में हर कहीं काम करने की और स्वाभिमान के साथ जीने की स्वतंत्रता दी है। सवर्ण इसे बदल नहीं सकते। दलितों के साथ काम करना अब उनकी मजबूरी है। परंतु जहाँ भी काम करेंगे- जन्मना श्रेष्ठ होने का दंभ लेकर। उन्हें समाज, राष्ट्र, इंसानियत आदि से कुछ लेना-देना नहीं है।

राजनीतिक संघर्ष

डॉ. आंबेडकर ने दलितों को राजनीति का मार्ग दिखाया। उन्हें पता था कि वर्तमान जीवन में परिवर्तन का मार्ग राजनीति से होकर जाता है। स्वयं बाबासाहेब ने कईं बार चुनाव लड़े हैं। वे सभी दलितों एवं श्रमिकों के लिए एक राजनीतिक पार्टी निकालना चाहते थे, परंतु उनकी अकाली मृत्यु ने यह काम पूर्ण नहीं हो पाया। परंतु अपने सामाजिक संगठनों के माध्यम से वे राजनीति में सक्रिय थे। भारतीय राजनीति में डॉ. आंबेडकर का उदय प्रस्थापित समाज के लिए असहनीय बात थी। न वे विरोध कर पाए न समर्थन दे पाए। हालाँकि उन्हें कईं बार रोकने का प्रयास कॉग्रेस ने किया है। परंतु बाबासाहेब कुछ अलग ही मिट्टी के बने हुए थे। उन्होंने अपना संघर्ष तब तक जारी रखा जब तक उन्हें उनका लक्ष्य प्राप्त नहीं हुआ।

बाबासाहेब का आदर्श लेकर भारतीय दलित समाज स्वातंत्र्योत्तर काल में राजनीति में उतरा। परंतु उसे राजनीति में आसानी से कदम रखने नहीं दिया गया। राजनीति में दलितों को दबाने का प्रयास किया गया। पंचायत राज लागू हुआ। अब दलितों को राजनीति में आने से कोई नहीं रोक पाया। सरपंच भी बने दलित कार्यकर्ता, परंतु उन्हें इसके लिए बड़ी कीमत चुकानी पड़ी है। दलित, जो अब तक ठाकुरों के सामने चारपाई पर भी नहीं बैठ पाते थे, आज सरपंच की कुर्सी पर बैठे, यह सवर्णों को कैसे हजम होता। और इसलिए उन्हें तरह-तरह से प्रताड़ित किया गया, उन पर जान लेवा हमला हुआ, उनकी बस्तियाँ जलाई गईं, उनकी स्त्रियों पर अत्याचार किए गए। फिर भी दलित राजनीति के मैदान से नहीं हठा। इन सारी बातों का वर्णन हमें दलित कहानियों में मिलता है।

दलित कहानीकार यह जानता है कि आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से विपन्न होने के कारण दलित समाज राजनीति में उपेक्षित जिंदगी जी रहा है। इतने वर्षों तक दलितों के विषय, प्रश्न भी राजनीतिक पार्टियों के अजेंडों पर नहीं आए। बहनजी की बसपा दलितों के प्रश्नों को लेकर राजनीति में उतरीं तब दलितों ने अपनी पार्टी मानकर पूरी ताकत लगाकर बहनजी को मुख्यमंत्री बना दिया। यह दलितों की ताकत का परिणाम था। गाँव-गाँव में कृष्ण जैसे युवा लड़के बसपा के कार्यकर्ता बनें। वे राजनीति में आए। परंतु उनके राजनीति में चले जाने से खेती-बाड़ी का काम रूक गया। ठाकुरों को नुकसान होने लगा। कृष्ण जैसा बसपा का कार्यकर्ता अब अपने मालिक से कहता है, 'सड़क पर रोड़ी कूट लूँगा। फैक्टरी में काम कर लूँगा, पर किसानों के काम नहीं करूँगा। अब जिससे कराना है उससे करा ले। तुम स्वर्ग में हम नरक में।'[3] इस कथन में दलितों में आयी राजनीतिक चेतना ही दिखाई देती है। परंतु इस चेतना से बौखलाएँ सवर्ण लोग अब हर तरह से कृष्ण जैसे लड़कों को सबक सिखाने का प्रयास करते हैं। कृष्ण को साँप से डसवाँकर मारा गया। बाकी लोगों को और मार्ग से हटाया गया है। इस प्रकार के अत्याचारों को दलित कहानी में प्रमुखता के साथ और अपनी यथार्थता के साथ चित्रित किया गया है।

आर्थिक संघर्ष

दलितों को आर्थिक संघर्ष का सामना हमेशा करना पड़ता है। गाँवों में जातिवाद के चलते रोजगार पाने में बहुत सी समस्याएँ आती हैं। अतः कईं बार दलित वर्ग के लोग शहर आ जाते हैं। शहरों में सबकुछ ठीकठाक है, ऐसे भी नहीं। परंतु गाँव में रहकर भूखों मरने से अच्छा है शहर जाकर देखें। यही सोचकर चतरसिंह गाँव से दिल्ली आता है। रोजी-रोटी के लिए चाय का ठीहा लगाता है। उसकी मेहनत, ईमानदारी और साफ-सुथरेपन के कारण कुछ ही दोनो में उसके ठीहा पर अच्छी खासी ग्राहकों की भीड़ जमा होने लगी। उसे अच्छे पैसे मिल रहे थे। वह खुश था। परंतु उसके ठीहा के कारण बद्रीनारायण का ठीहा अब सुना-सुना हो गया। बद्रीनारायण ठहरा पंडित आदमी। उसने ऐसी चाल चली की चतरसिंह का ठीहा बंद पड़ गया। क्या किया पंडित ने ऐसा कि उसका ठीहा चल पड़ा और चतरसिंह मक्खियाँ मारता रह गया ? पंडित ने किया कुछ नहीं, उसने बस हजारों सालों से चली आ रही जातिय मानसिकता को जगाकर ग्राहकों को चतरसिंह की दुकान पर जानेवालों

को रोक दिया। उसने अपनी चाय का रेट बड़ा दिया। ग्राहक पूछता, भाई सामने तो कम दाम में चाय मिलती है। तब वह ग्राहकों से इतना ही कहता, 'यह एक पंडित की दुकान है, और सामनेवाली चूहड़े की।'[4] चतरसिंह को हराने के लिए इससे आसान और परिणामकारक चाल और क्या हो सकती थी। अतः पंडित के जातिवाद के आगे दलित चतरसिंह हार गया। उसके पास पंडित की चाल का कोई जवाब नहीं था।

शहरों में दलितों को कोई न कोई रोजगार तो मिल जाता है पर गाँव में रहनेवाले दलितों को वह भी नहीं मिलता। खेती-बाड़ी का काम जमींदार कई बार बेगार में करवाते हैं। आय का कोई दूसरा साधन नहीं। अतः उन्हें सरकार की योजनाओं का ही मुँह देखना पड़ता है। सरकार गरीबी दूर करने के लिए कितना पैसा खर्च करती है। योजना का अमल करनेवाले अधिकारी अमीर हो जाते हैं, गरीब जहाँ था वहीं रह जाता है। गाँव में रहनेवाले और स्कूटर मैकेनिक का काम कर परिवार का पेट भरनेवाले, बी.पी.एल. कार्ड संख्या 2118 धारक अशोक आज तक किसी सरकारी योजना का लाभार्थी नहीं हो पाया है। काफी प्रयत्नों के बावजूद सरकार की किसी योजना का उसे अब तक कोई लाभ नहीं मिला है। छह बच्चों का बाप है अशोक। शिक्षा बहुत अधिक नहीं। आय का कोई दूसरा साधन नहीं। घर में पैसठ वर्षीय बूढ़ी माँ कलावती है। एक कलावती वह थी जिसकी खेती-बाड़ी थी और एक नेता के कारण उसकी गरीबी की चर्चा देश की संसद में हुई थी। एक यह कलावती है जो इस उम्र में मजदूरी करने के लिए मजबूर है। अशोक के लाख प्रयत्न करने के बाद भी उसे कोई सरकारी योजना का लाभ नहीं मिला था।

अशोक एक सामान्य स्कूटर मैकेनिक है। मुर्दा मवेशी उठाने का पुश्तैनी पेशा वह छोड़ चुका है। रहने को घर नहीं, खेती नहीं। रस्ते पर एक पेड़ के नीचे चुपचाप अपना काम करता रहता है। सरकार ने गरीबों के लिए इंदिरा आवास की योजना बनाई है। बी.पी.एल. कार्ड धारक अशोक को अभी तक आवास नहीं मिला है। सरकार ने सर्वशिक्षा अभियान चलाया। उस अभियान से भी उसके बच्चे छूट गए। वे स्कूल नहीं जा सकें। सरकार ने कानून बनाया कि चौदह साल से कम उम्र वाले बच्चों को काम न दिया जाए। अशोक के बच्चे काम नहीं करेंगे तो खाएँगे क्या ? सरकार यह चाहती है कि नाबालिग बच्चियों की शादी न हो। अशोक की दोनों बेटियों की शादी दस-बारह की उम्र में हो गई। राज्य में बसपा की सरकार है। बहनजी ने दलितों के लिए कई योजनाएँ चलाईं। उस क्षेत्र का बसपा पदाधिकारी ने अशोक और उसके जैसे बस्ती के अन्य लोगों से कहा था, आवास का पट्टा मैं दिलवा दूँगा, तुम मेरे लिए मारुति खरीदवा दो। वे गरीब लोग मारुति कहाँ से खरिदवा देते ? अतः वे बेघर ही रहें।

अशोक ने क्या नहीं किया। सबको पत्र लिखें। शिकायतें की। पर सरकारी अधिकारियों के कान पर जूँ तक न रेंगी। आखिर वह अपनी ही जाति-बिरादरी वालों के हाथों मारा गया। इसलिए दलित एक्ट के अनुसार भी कोई कार्रवाई न हुई और उसके परिवारवालों को कोई आर्थिक सहायता नहीं मिली। वास्तव में उसकी मौत के लिए जिम्मेदार राज्य के आला अफसर थे, पकड़े गए चार चमार। लोग अशोक को पागल कहने लगे थे। लोगों की राय थी कि 'अशोक ऐसा ही था। कभी प्रधान की शिकायत, कभी लेखपाल की। कभी मूर्ति स्थापना के विवाद में टांग अड़ाई। यह भूमिहीन गरीब जमींदारों से भी झगड़ने का हौसला दिखाता है। वाकई, बौरा गया था अशोक।'[5] दलितों की आर्थिक परिस्थिति का और सरकार की गरिबों के प्रति उदासिनता का यह सच अभिव्यक्त किया है श्यौराजसिंह बेचैन ने अपनी कहानी 'कार्ड संख्या 2118' यह कहानी अशोक के संघर्ष को, उसकी आर्थिक परिस्थितियों को, उसके संघर्ष को यथार्थ रूप में चित्रित करती है।

गाँव-शहरों में दंगे होते रहते हैं। ठाकुरों के अत्याचार होते रहते हैं। उनमें कई युवा दलित मारे जाते हैं। उनके पीछे उनकी स्त्रियों के साथ अत्याचार तो नियमित बात है। एक तो गरीबी, अपमान और ऊपर से घर का मर्द मारा जाए तो कोई विधवा कैसे जिए ? जिंदगी से कैसे लड़े ? श्यौराज सिंह बेचैन ने अपनी कहानी 'हाथ तो उग ही आते हैं'[6] में इसे बड़ी संवेदना के साथ उद्घाटित किया है। रुक्खो का पति दंगे में मारा गया है। घर में दो जून रोटी नहीं। छोटा बच्चा है। उसे

लेकर शहर भाग आई। उसके हाथों से मोटरसाइकिल चल गई। डॉक्टर तक पहुँचने में उसे कुछ दिन लग गए। अब डॉक्टर कह रहे हैं कि उसके बच्चे को बचाना है तो उसके दोनों हाथ काटने पड़ेगे। अपने बच्चे को कैसे बचाए रुक्खो। उसके भविष्य को कैसे बचाए वह। न पैसा है कोई मददगार। दलितों को इस प्रकार के हादसों से हमेशा गुजरना पड़ता है।

दलितों की तरह आदिवासियों को भी पेट की भूख मिटाने के के लिए इज्जत बेचनी पड़ती है। भुईसरटोला जैसे आदिवासी गाँवों में माँ-बाप अपनी बच्चियों की इज्जत बेचने के लिए मजबूर हैं। पेट की भूख है यह। आदमी जिंदा नहीं रहेगा तो इज्जत का क्या करेगा ? इसलिए किशनी का बाप स्वयं अपनी विवाहिता बेटी को बच्चों समेत एक ठेकेदार को पाँच सौ रुपयों में बेच देता है। यह सारा विदारक चित्रण हमें सी.बी. भारती की 'भूख'[7] कहानी में पढ़ने को मिलता है।

सांस्कृतिक-धार्मिक संघर्ष

सामाजिक पक्ष को लेकर दलित साहित्यकार हमेशा सजग रहा है। सूरजपाल चौहान की कहानियों में दलित समाज का यथार्थ चित्रित है। रचनाकार का सूक्ष्म निरिक्षण एवं विचार दृष्टि इस चित्रण के पीछे है। उन्होंने दलित समाज के अज्ञान-अंधकार को चित्रित करते समय किसी बात को छिपाने का प्रयास नहीं किया है। यह उनकी ईमानदारी है कि उन्होंने न केवल उच्च वर्णिय समाज की विकृत सोच को उद्घाटित किया है, बल्कि दलित समाज की विकृत कहीं जाने वाली रुढ़ि परंपराओं का भी बेबाक चित्रण किया है। 'बस्ती के लोग' मांस का भोजन और शराब मिले बिना अर्थी में भाग नहीं लेते। 'कारज' कहानी में महर्षि वाल्मीकि का नाम लेकर दलित समाज मांस की दावत देता है। 'कारज' कहानी का नायक सोचता भी है कि वाल्मीकि का और मांस की दावत का आपस में क्या संबंध है ? पढ़ा-लिखा दलित युवक ऐसी रुढ़ि-परंपराओं का विरोध करता है।

धर्म बदल जाता है फिर भी रूढ़ि-परंपराएँ तथा संस्कार नहीं बदलते। सूरजपाल चौहान ने इस बात को अपनी कहानी 'चूहड़ाः तीन चित्र' में उद्घाटित किया है। डॉ. बाबासाहब आंबेडकर के धर्म परिवर्तन के बाद आज भी अनेक दलित बौद्ध धर्म का स्वीकार कर रहे हैं। विषमता वादी हिंदू धर्म का वे त्याग कर वे समता वादी बौद्ध धर्म का स्वीकार कर रहें हैं। परंतु बौद्ध बनने के बाद भी हिंदू धर्म के संस्कारों का त्याग नहीं हुआ है। बौद्ध उपासक राजबीर और उसकी माँ फुलिया के साथ इसी प्रकार का व्यवहार करते हैं। बौद्ध धम्म अपनाने के बाद धार्मिक और जातिगत ऊँच-नीचता जानी चाहिए थी। परंतु राजबीर और उसकी माँ के साथ ऐसा नहीं हुआ। राजबीर की माँ फुलिया का जूठा कप अलग रख देती है। क्योंकि फुलिया मेहतर है। यहाँ राजबीर और उसकी माँ की मानसिकता बौद्ध होने के बाद भी हिंदू धर्म की बनी रहती है। केवल बौद्ध कहलाने से या बौद्ध धर्म का स्वीकार करने से जातिगत भेद भाव नहीं जाता।

स्कूल में दलित बच्चों से सवर्ण अध्यापक भेदभाव के साथ पेश आते हैं। हीरालाल बुद्धिमान छात्र है जो जाति से चमार है। रामभजन अवस्थी सवर्ण मानसिकता के अध्यापक थे। वे साफ-सफाई का काम हीरालाल को ही बताते हैं जहाँ बाकी सवर्ण बच्चे पढ़ते रहते थे। गाँव में शिवमंदिर पर रामचरित मानस का अखंड पाठ था। शिव-मंदिर की चोटी साफ करने के लिए हीरालाल की जान खतरें में डाली गयीं। पाँचवी कक्षा का बच्चा मंदिर के गुम्बद तक चढ़ा। उससे गुम्बद साफ करवाया गया। परंतु जब वही बच्चा अखंड पाठ करने के लिए अन्य बच्चों के साथ बैठा तो रामभजन अवस्थी गुस्सा हो गए। बोले, 'इसे किसने कहा अखंड पाठ करने के लिए ? इस अछूत को रामायण की चौपाई पढ़ने का कोई अधिकार नहीं है यह अखंड पाठ खंडित हो जाएगा।'[8] यहाँ सवर्ण अध्यापकों की मानसिकता पर प्रकाश डालते हुए दलित कहानीकार हमारी शिक्षा व्यवस्था को कटघरे में खड़ा करते हैं। क्या इस प्रकार की शिक्षा के बाद भी हम हीरालाल से यह अपेक्षा रखें कि वह सभी भारतीयों को अपना भाई-बहन कहता रहें ? ऐसी स्थिति में समाज में परिवर्तन कैसे संभव है ?

दलित समाज को हिंदू धर्म में हमेशा हेय समझा गया। कईं बार तो उन्हें हिंदू भी नही माना जाता। मंदिरों में, पूजा-अर्चा में इसीलिए तो उन्हें रोक दिया जाता है। पर कईं बार मुसलमानों के खिलाफ लड़ने के लिए ब्राह्मण संगठन दलितों को उनके हिंदू होने की याद दिलाते हैं। दलितों को आगे कर मस्जिद गिरवाते हैं। हिंदुओं की इस चलाकी और धूर्तता को डॉ. पूरन सिंह ने 'यूज एंड थ्रो'[9] कहानी में बड़ी गंभीरता के साथ उद्घाटित किया है। इस कहानी की नायिका अपनी बच्ची श्यामली को इस तथ्य से अवगत कराती है जो 'दुर्गावाहिनी' की सदस्या थी। माँ के अनुभवों को सुनने के बाद श्यामली दुर्गावाहिनी तो क्या किसी भी धार्मिक संगठन से रिश्ता नहीं रखती। यहाँ हिंदू धर्म के विविध संगठन, उसके द्वारा होने वाले समाज विरोधी कृत्यों को कहानीकार ने पाठकों के सामने रखा है। कईं बार दलितों को आकर्षित करने के लिए हिंदू संगठन बड़ी-बड़ी बातें करते हैं, देशभक्ति का नारा देते हैं, परंतु उनका वास्तविक लक्ष्य कुछ और होता है।

निष्कर्ष

इक्कीसवीं सदी की दलित कहानी ने एक उपेक्षित दनिया को चित्रित किया है। इस कहानी का बहुत लंबा-चौड़ा इतिहास नहीं है। फिर भी इस कहानी ने समीक्षकों, पाठकों का ध्यान खींचा है। भाषा, चरित्र, उद्देश्य आदि में यह कहानी परंपरागत हिंदी कहानी से अलग होते हुए भी हिंदी साहित्य को इसने समृद्ध किया है। भारतीय दलितों का जीवन इस कहानी ने उद्घाटित किया है। इसलिए इस कहानी का समाजशास्त्रीय दृष्टि से भी महत्व है। दलित कहानी के माध्यम से ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, रत्नकुमार सांभरिया, कुसुम वियोगी, जयप्रकाश कर्दम, रजत रानी मीनू आदि एक से बढ़कर एक साहित्यकार दिए हैं। समता, स्वातंत्र्य, बंधुता इन मानवीय मूल्यों को लेकर चलने वाली यह कहानी मात्र मनोरंजन के लिए नहीं लिखी गई है। यह कहानी सोद्देश्य लिखी गई है। यह कहानी परिवर्तन की माँग करती है। यह कहानी इंसानियत का पाठ पढ़ाती है। इसलिए इक्कीसवीं सदी की हिंदी कहानी का महत्व स्वयं स्पष्ट है।

संदर्भ-

1. घूसपैठिये- ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली, प्रथम संस्करण- 2003, पृ. 34-35
2. वही, पृ. 36
3. दलित साहित्य 2007-2008, (वार्षिकी) पृ. 193
4. दलित साहित्य 2004, (वार्षिकी) पृ. 124
5. हंस (अक्टूबर, 2012), 'कार्ड संख्या 2118', श्यौराजसिंह बेचैन, पृ. 25
6. हंस (जन. 2014), पृ. 25
7. दूसरी दुनिया का यथार्थ- संपा. रमणिका गुप्ता, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण- 2012, पृ. 221
8. दलित साहित्य- 2004, (वार्षिकी) जहरीली जड़े- रूपनारायण सोनकर, पृ. 142
9. दलित साहित्य 2007-2008, (वार्षिकी) पृ. 199